

हम

संवेदन कल्चरल प्रोग्राम के लिये नाटक

पात्र: 1. जीनत, 2. चांदनी, 3. बड़की और कोरस.

(1)

कोरस: मंच पर दो स्पॉट को ढांप कर खड़ा है। हमींग के बाद शुरू करेगा:

1. जब जब लड़ाईयां होती है, हिंसा का लंबा दौर चलता है....
2. तब फ़ैल जाती है नफ़रत.... ज़माने में
3. छा जाता है दिशाओं में डर.....
4. पीछेहट करने लगते है सभ्यता के क़दम.....
5. अपने अपने जातधरम की संकरी-अंधेरी कोठरियों में दुबक जाते हैं लोग....
1. ठीक वैसा ही हुआ, सन दो हज़ार दो के फ़रवरी की सत्ताईसवीं के बाद...गुजरात में।
2. एक ऐसा हिंसाकांड.... सरकार और समाज की एक ऐसी सोचीसमझी साज़िश जिस में एक ही कौम को निशाना बनाया गया.... सर्वनाश का।
3. और फिर हो रही कोशिश कि जो हुआ सो हुआ.... भूल जाओ।
4. नहीं.... बल्कि ऐसी एक भरसक कोशिश कि ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था....ये सारा अंग्रेजी मीडिया और मुट्ठीभर लोगों का कुप्रचार है, -गुजरात को बदनाम करने के लिये!
5. ऐसा ही होता है जब राजनीति बन जाती है, आपखुद सत्ताखोरों की कुर्सी का खेल।
1. ऐसा ही होता है जब समाज में लोग अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ना भूल गये हों... थक गये हों या लड़ने के लिये तैयार ही ना हों!
2. ऐसा ही होता है जब समाज एक दौर को ख़तम करके दूसरे दौर की ओर जा रहा हो और दोनों दौर के बीच अंधेरा छाया हुआ हों!
3. आईये.... आज हम ऐसे अंधेरो का सफ़र करने जायें जहां छाई हुई है धूंद....
4. और धूंद में ढंकी हुई है एक सत्यघटना दो औरतों की
5. दो मज़लूम औरतें.... गुजरात के उस ग्रामीण इलाके की.... जहां दोनों कौमों के बीच पड़ी हुई दरारों में जमा हुआ खून तो सूख गया है पर टपक रहे है आंसू.... सन दो हज़ार दो की फ़रवरी की सत्ताईसवीं के बाद.... आज भी....

(हमींग)

(2)

* कोरस के हट जाने पर स्पॉट A खुलता है। ज़ीनत दिखाई देती है।

ज़ीनत— मैं हूँ ज़ीनत। ज़ीनत अकरम शेख़। यह है हमारी आदिलाबाद कोलोनी। पंचमहाल ज़िले के कोने में बनाई गई एक राहत-कोलोनी। ना...ना... यह हमारा अपना गांव नहीं है। यहां हमारे पुरखों के घर भी नहीं हैं न तो हमारी खेतीबाड़ी है... वह सब तो छूट गया... लूट गया। यह तो सिर्फ़ राहत कोलोनी है... जहां पर हमारे जैसे लूटे-पिटे-बचेखुचे लोग रहते हैं। इस सखावती घर में रह रही हूँ मैं और मेरा दस साल का बेटा... युनूस! बस्स.....

(3)

चांदनी— और मैं चांदनी। मन्सूरी चांदनी इंद्रीसभाई। गांव ख़ारी कड़ी, तालूका कालोल, ज़िला पंचमहाल। दो हज़ार दो के बळतर और मारकाट के बाद भी मुझे अपने गांव में ही घर मिला। गांव में मूल बस्ती आदिवासियों की। हमारेवालों के कुछेक घर थे; कोई नहीं बचा। क्या कहा... मैं कैसे बच गई? अरे, मैं भी कहां?... मैं तो आधी मुसलमान और आदिवासी। अब आधी ही रह गई। चंपा से चांदनी बन कर आई थी इस गांव में। मेरा मरद नहीं रहा। मैं और मेरे छह बच्चे—कैसे बचे? कैसे जिये?... वह तो एक मैं जानूँ और दूजी जानें मेरी ज़ीनत बेन!

(4)

जीनत—

मुझे ठीक से याद है। वह दो हजार दो के मार्च महिने की दो तारीख थी। कालोल के राहत केम्प में मैं और चांदनी एक दूजे से पहली बार मिले थे। चांदनी... केम्प के एक कोने में दूबकी हुई, बिमार-सी, निढाल औरत। गोद में एक बच्चा, कंधे से लिपटे और दो-तीन बच्चे, सामने लेटी हुई एक थकी-मांदी बच्ची और चांदनी की ठीक बगल में खड़ी एक लंबी, छरहरी लडकी—उसकी बड़ी बेटी.... अपनी बड़ी बड़ी आँखों से टुकुर टुकुर देख रही थी, जैसे राहत केम्पों के माहौल को नापतौल रही हो। तभी छोटे बच्चे भूख से रिरियाने लगे। लाचार मां और क्या करती—चपतें मार कर चूप करने की नाकाम कोशिश के अलावा?.... 'अरे, मारो मत'—कहती, दौड़ती हुई मैं उसे रोकने जब उसके पास पहुँच गई पर.... मैं ही रो दी।

(5)

चांदनी—

और बस्स.... दर्द के रिश्ते में बंध गई हम दोनों। उस के सिवा और क्या रिश्ता हो सकता था.... हम दोनों के बीच? मैं तो.... मतलब कि.... अगर जीनत को पता होता कि मैं चंपा हूँ तो क्या उस तरह हम गले से लिपट जाते? केम्प में जो भी मजलूम थे... वे सारे एक ही सूर में कह रहे थे कि वो टोले हमारेवालों के थे.... मानें.... आदिवासियों के! और पूरे केम्प में जो मजलूम थे वे सारे हमारेवाले थे! हायहाय!....यह मैं क्या बके जा रही हूँ?! मानें.... मरनेवाले भी हमारेवाले.... और मारनेवाले भी हमारेवाले?.... ये.... ये... 'हम' मानें कौन?

(6)

कोरस-

1. सिर्फ पंचमहाल के ही नहीं; सारे गुजरात के आदिवासी के मन में यह सवाल उठना चाहिये कि 'हम' मानें कौन?
2. उन्नीसौ उनासी की "राम-इंटा-यात्रा" से शुरू होता हुआ यह सवाल, नब्बे के "रामरथ" पर सवार हो के, बानवे में अयोद्या के मकाम तक पहुँच ही गया... आखिरकार।
3. पिछले दस साल से ये सभी मरनेवाले, ये सारे मारनेवाले, आप और हम भी देख रहे थे कि माहौल बदल रहा है... आदिवासी विस्तारों में।
4. सिर्फ होली और दिवाली ही नहीं; नवरात्रि, गणपति और रामनवमी के साथ साथ दशामा और गौरीव्रत भी बन रहे हैं इनके त्यौहार।
5. दूरदराज गांवों तक, स्कूलों के मैदान में झंडे गाड़े जा रहे हैं और भारत माता की जै-जैकार के साथ साथ मर्दानगी का प्रदर्शन करनेवाली तालीमें शुरू हो चुकी हैं।
1. सवाल यह होना चाहिये कि आदिवासीओं को संस्कृति का वास्ता दे कर लड़ाया जायेगा या उसके जंगल-जमीन-पानी-रोज़ी और रोटी के अधिकारों के नाम जगाया जायेगा?
2. पर हम सब देखते ही रह गये... कुछ नासमझी में.... कुछ देखा-अन देखा करके। और हो के रहा जो होना था.....
3. नहीं! हो के रहा जो कुछ लोग करना चाहते थे....
4. और शायद एक अमीट दूरी बन गई दो कौमों के बीच.....
5. सन दो हज़ार दो के फ़रवरी की सत्ताईसवीं के बाद.... गुजरात में।

(7)

जीनत-

हां.... मुझे कुछ कुछ अंदाज़ा तो था कि चांदनी आदिवासी है; और आम हालात होते तो, हो सकता है; हम कभी न मिल पाते! पर केम्प के दिन तो कितने दर्दनाक थे!

चांदनी— नहीं.... बहुत ही खतरनाक थे वे दिन! ऐसे में भला, कौन किस पर भरोसा कर सकता था?!

जीनत— जो भी हो। हम औरतें, सब से पहले और सबसे आखिर में —सिर्फ औरतें हैं! धरम—इमान—क़ौम—जात.... देस—परदेस— सब कुछ बाद में आता है। अगर ऐसा न होता तो मैं भला चांदनी के कंधे पर सिर रखते ही रो कैसे देती? अरे, वो ही तो पल था, जब मैंने मेरे अपनों का मातम पहली बार किया!

(8)

चांदनी— तेईस लोग.... अपने परिवार के तेईस लोगों को गंवा बैठी थी जीनतबेन। केम्प के दिनों में हम रात रात भर, एक दूजे को अपनी अपनी कहानियां सुनाते थे.... रोते...बतियाते.... रोते.... आंसू पोंछते बीत जाती थीं रातें। जब बळतर हुआ तब शादी—ब्याह का मौसम था और उधर ईद भी सामने आ रही थी। लोगबाग खुशियाँ मना रहे थे। पर उधर गोधरे मे सत्ताईस को जो हुआ उस की लपटें ठेठ इधर तक लपकेगी और इतना सारा जलाकर खाक कर जायेगी, ऐसा कौन सोच सकता था, भला?

(9)

जीनत—

कैसे बच गई मैं? पता नहीं! हमने गांव में सुना कि आसपास के एरिये में मारकाट चालू हो गई है; कुछ रूपया पैसा लेके, टेम्पो भर के गांव से निकल गये। अभी नाले के पास ही पहुँचे थे कि घर लिये गये! जिसका डर था वही सामने आ गया! पता नहीं.... कितने सारे लोग टेम्पो से— ख़टारों से— जीपों से उतर उतर कर हमारी ओर धंसे आये। उनके हाथों में तिरशूल—तलवार—गंडासे थे तो कुछेक के हाथों में बंदूक जैसा भी मैंने देखा.. .. हम भागे.... मैं दौड़ी..... गोद में मेरा छोटा—सा युनूस..... ढलती शाम का अंधेरा.... मेरा पैर फिसला और गिर पड़ी नाले में! एक हाथ से गोद के बच्चे को पकड़ा और दूसरे हाथ में झाड़झंखड़ पकड़ के लटक गई। उधर सामने तो जैसे करबला का मैदान.... जीपों की लाईटों में देखा तो मेरे लाडला युसूफ़ और उसके अब्बू के टुकड़े इधर उधर बिखरे पड़े थे। मेरी ग्यारह साल की बेटी शम्मी को तो मेरी नज़रों के सामने.... अल्लाह.... मैं कैसे देख पाई सब कुछ? इतना कुछ देख कर भी कैसे ज़िन्दा रह पाई मैं.... करमजली!

(10)

बड़की—

हमारे गांव तक भी शाम होते होते गोधरावाली ख़बर तो पहुँच ही गई थी। कुछ लोग कहते रहे कि उधर हुआ है —इधर क्यों फ़िकर करें?! पर देखते ही देखते हज़ार तरह की अफ़वाहें चल निकली। मेरे अब्बू भाड़े का ट्रक चलाते थे। उसी शाम बरोड़ा की वरधी मिली थी। न जाते तो हमारे पेट कैसे भरते? हमें फ़िकर करते हुए छोड़ कर वे निकल गये। पर दो—एक घंटे भी नहीं हुए थे कि हाई—वे के पास गांवों के कुछ लोग अब्बू की लास ले के आ गये। अब्बू को क्या हुआ होगा? एक्सीडेंट या और कुछ?.... हम अभी कुछ सोचसमझ पायें, उतने में बूमाबूम.... टोला आया! वो ढोल नगाड़े.... वो जय श्री राम के नारे.... डर गये थे हम सारे! गांव के हमारे मोहल्लेवाले सारे जान हथेली पर रख के भागने लगे.... हमें भी घसीट कर साथ में ले गये.... और अब्बू की लास धरी की धरी रह गई.... वहीं!

- चांदनी— और मैं भी क्या करती तब? मरे छोटे छोटे बच्चे, मेरी जवान होती हुई बेटी.... मैं भी अपने इस बचेखुचे संसार को गले लगा कर भाग निकली।
- बड़की— दो दिन तक लगातार..... जंगलझाड़ियों में छिपते-छिपाते, भूखे प्यासे.... कुत्तों की तरह ज़बान लटकाये भटकते रहे। तीसरे दिन मिलेट्री का डब्बा दिखा। सब को बिठा के कालोल के राहत केम्प में पहुँचाया।
- चांदनी— और मैं तो जैसे बेहोस! आंख खुली तो बड़े से तंबू के नीचे। कैसी तो हायपीट! कैसी तो चीखपुकार! हड़बड़ा के मैं भी चीखने लगी: मेरी बेटी? मेरे बच्चे? फिर जब सब को मेरे आजुबाजु पाया तो तसल्ली की मारी फिर से बेहोस! हां, इतना जरूर कहूँगी कि हमें केम्प में ला कर हमारेवालों ने मेरे मरे हुए मरद की इज़्जत तो बचा ली!

(11)

कोरस: आदिवासियों की तरह नाचते हुए गाता है:
"हे शामला जी ना मेळा मां
रणझणियुं बाजे ने पैझणियुं बाजे..... टीर्रर्र....."

(12)

जीनत- अरे, क्या बताउ? केम्प के दिनों में चांदनी ने जब अपनी लवमेरेज की कहानी सुनाई तब तो हम देर तक उन लम्हों की मीठास में डूबे रहे। चांदनी के शौहर इंद्रीसभाई उस वखत शटल जीप चलाते थे। उधर शामळाजी के मेले में उसने चंपा को देखा और रंगबिरंगी चुड़ियों के साथ साथ उसे अपना दिल भी दे बैठा। फिर तो लगातार मेलों-टेलों में मुलाकाते होती रही, बढ़ती रही। आखिरकार पूनम की एक रात में चंपा को वह लेकर आ ही गया अपने घर। और बड़े प्यार से उसने चंपा का नाम रख दिया चांदनी।

बड़की- हायल्ला! यह तो आज से सोलह-सत्रह साल पहले का जमाना था जब यह सब हो सकता था... चलता रहता था। अगर आज की तारीख में मैंने कोई ऐसा कदम उठा लिया तो क्या होता?!

कोरस:

सूत्रोच्चार करता हुआ कोरस कट्टरपंथियों की भूमिका करेगा:

1. तोड़ दो-फोड़ दो; ऐसी शादी तोड़ दो!
2. जो हिन्दूहित का नाश करेगा मिट्टी में मिल जायेगा!
3. लाहौलविला कुव्वत! काफिर की बेटी से शादी!
4. अरे.... शुद्धीकरण हो के रहेगा.... हमारी कन्या हमारी रहेगी!
5. जय श्री राम!
1. एक मर्द और एक औरत की शादी को मध्यकाल के अंधकार युग में युद्ध का कारण बनाते थे। आज सवाल यह है कि मानव सभ्यता इक्कसवीं सदी में पहुँची है या फिर उस अंधकार युग में ही अटक गई है?!

चांदनी—

पता नहीं, यह ज़माना हमेसा से प्यार—मोहब्बत का दूसमन क्यों है? मैं और इंद्रीस ढेर सारी पिच्चरे देखते थे। अनारकली, मेरूमालन, सेणी—विजाणंद, लैलामजनु... सब में ये ही बात... आदमी और लुगाई इसक में मसगुल पर लोगबाग है कि बस्स! या तो दो प्रेमीओं को मार दिया या खुदकुसी करने पर मजबूर कर दिया! उपर से दुनियाभर की बदनामी तो पूछो ही मत! अब देखो ना, आज के जमाने ने, अपनी जीनतबेन की भी कहां छोड़ा? राहत केम्प तो छै: छै: महिनों तक चले। वहां जीनतबेन कई सारे घायलों—दुःखियों के साथ बैठती—बतियाती थी। कईयों के आँसू पोंछती थीं, कईयों के मुख पे मुस्कान वापस लाती थी। पर मैं देखती थी कि सब का सहारा बनने वाली मेरी ये बेन खुद कितनी अकेली थी! पर तभी ऐसा हुआ कि हम सब दुखियारों की दुआ जैसे कुबूल हो गई और जीनत को फ़ारुकभाई मिल गया! फ़ारुकभाई मकराणी —हमारे ही इलाके का खातापिता कारखानेदार। वह भी लूटपिट कर ही आया था पर जीनत की तरह वह भी अपने दुखा को एक बाजू मे रखकर हमारे जैसों के दुःख दूर करने की कोशीश कर रहा था। ये केम्प उसीने सुरु करवाया था। उतना ही नहीं..... इन पिछले बरसों में कोलोनीयां बनवाना, राहत की रक़म दिलवाना, मजलूमों के केस करवाना, कोरट कचेरी के धक्के फ़ेरे.... न दिन देखा न रात! और फिर उस भले मानस को मिल गया मेरी जीनतबेन का साथ! वाह क्या जोड़ी लग रही थी! पर वाह रि जमाना! इनकी भलाई के बदले में क्या दिया?!

*कोरस:

1. केम्प के मज़लूमों ने और धरम के ठेकेदारों ने.....
2. तो कहीं कहीं अपने आप को बहुत सुलझा हुआ समझनेवाले बुद्धिजीवीयों और संस्थावालों ने भी इस रिश्ते पर भौंहे उठाई!
3. कोई कहने लगा कि एक बेवा को पराये मर्द के साथ यूं घुमना शोभा नहीं देता। वह औरत के नाम पर एक धब्बा है!
4. तो किसीने कहा कि अपने परिवार के इतने लोग गंवाने के बाद भी यह कैसे हँस—बोल लेती है?! कैसे खुशरंग कपड़े पहनकर, खुले मुँह घूमती रहती है?! जीनत बेशर्म बेवा है!
5. और धरम के ठेकेदारों ने तो जीनत के इस कामकाज़ को ही ख़ारिज कर दिया और औरतों को घर की चार दीवारों में ही रहना चाहिये ऐसा मानों हुकुम फरमा दिया!

(14)

जीनत—

औरत के लिये ये अच्छा नहीं—वो अच्छा नहीं! ये गुनाह है—वो पाप है! आहा! औरत ना हुई जैसे तुम्हारी तहजीब की गुलाम हो गई! अरे, कौन सी दुनिया में जिन्दे हो तुम लोग?! जरा बाहर आके तो देखो..... ईक्कीसवीं सदी आ पहुँची है! दुनियाभर के मज़लूम इन्साफ़ मांगने उठ खड़े हुए है... पर तुम लोग? तुम तो अपने उपर किये गये जुल्मों को गिनने के बजाये एक औरत के गुनाह गिनने बैठ गये?! एक जवान औरत के ग़रेबान में झांकने बैठ गये?! अरे मैं तो फ़ारुक की शुक्रगुज़ार हूँ कि उसने मुझे नई रोशनी दिखाई! मेरा बस चले तो मैं जहानभर की बेवाओं को बुलाकर एक बड़ी सी मीटिंग करूँ और छप्पर पर चढ़ के सब से कहूँ कि.... बेनों! खूब जियो.... खुल कर जियो.... अपने लिये जियो! और हां.... कान खोल कर सुन लो, ऐ दुनियावालों! मुझे भी अपने तरीके से जीना है.... मुझे मेरे हाल पे छोड़ दो।

(15)

चांदनी—

पर हम औरतों के लिये, जीना उतना आसान कहां है? छै—सात महिने केम्प में दो टेम की रोटी मिली, छप्पर मिला! पर औरत तो आखिर औरत है। उधर टोलों के हाथोवाली जबरदस्ती से बचे गये तो यहां अपनेवालों की मर्दानी नजरों से कहां बच पायें? केम्प हो या कोलोनी.... औरत का शरीर जैसे मर्दों की राहत का धाम हो गया! खैर.... केम्प तो सरकार ने उठवा दिये पर जाने का ठिकाना कहां था? फिर जीनत और फारुकभाई जैसे संस्थावालों ने गांव—गांव जा कर मीटिंगें करीं और हमारे जैसों को गांव में वापस बसाया। मेरा टूटा—जला घर ठीक करवाया और मुझे और मेरे बच्चों को चैन की साँस वापस दिलवाई।

(16)

जीनत— तो? इस में कौन सी मेहरबानी हुई? न मैंने कोई मेहरबानी की, न जमातवालों ने या ना तो सनस्थावालों ने! वह तो हरेक मज़लूम का हक बनता है कि उसे अपने ही गांव में वापस घर बार मिले, खोया हुआ रोजगार मिले, सलामती मिले। खैर, वैसे सब को तो हम वापस बसा नहीं पाये पर उनके लिये कानूनी कोशीशें तो जारी हैं। अरे हां.... मैं यह बताना तो भूल ही गई कि अब तो मुझे अमन और इन्साफ़ का काम करनेवाली सनस्था में नौकरी भी मिल गई है तो अब तो जोरशोर से ये काम कर रही हूँ। और हां.. .. वैसे अपनी चांदनी की बात ज़रा हटके है ना?! असल में तो वह चंपा है ना?!

(17)

*कोरस

1. हां.... चांदनी असल में चंपा है। तो उसे अपने गांव में रहने देने के लिये ख़ास मुश्किल नहीं है; है ना?!
2. हां.... चंपा वापस लौटें और वह भी अपनी जवान होती हुई बेटी के साथ उस में सरपंच गेमाभाई, दुकानदार सुरेशभाई या पड़ोसनें.... शांताबेन-कांताबेन को क्या प्रोब्लेम हो सकता था?
3. तिस पर.... चंपा उर्फ़ चांदनी एक बेवा भी है; जिसके पास न ज़मीन है न खेत.... वह भला किसके लिये अड़चन खड़ी करेगी?
4. इस समाज में अगर कोई बेवा दूसरों के सहारे जीती रहे उसमें न बेवा का कोई रंज होता है.... ना समाज को कोई तकलीफ़!
5. और चंपा उर्फ़ चांदनी का एक भी बेटा उतना जवान नहीं है कि आतंकवादी बन कर बदला लेने निकलें। तो चंपा उर्फ़ चांदनी, गांव के छोर पर अपने पुराने मोहल्ले में खड़े ऐकलौते घर में रहने लगी है।

(18)

चांदनी—

जीनतबेन ने घर भी बनवा दिया और सनस्था से लोन देकर एक भैंस भी बंधवा दी.... ताकि दूध के कारोबार से मेरे परिवार की गुज़रबसर हो सकें। हं. ... पर हमारे गांव में तो पहले से ही दूध का कारोबार करनेवाले पटेल, भरवाड.... मेरे पास दूध लेने कौन आता? और मुझ से दूध कौन लेता, भला? मेरी बड़की को भी दूर दूर तक दूध बेचने कैसे भेजूं? बड़ी हो गई है... . लोगों की नजरें बदल रही हैं! और खाली दूध बेच कर सात सात पेट कैसे भर पाती भला?... तो मैंने भी वोही काम शुरू किया जिसे लोग दुनिया का सब से पुराना धंधा कहते हैं —हां.... मैंने कहा था ना कि औरत का शरीर सब को राहत देता है! मेरे इस शरीर ने मेरे बच्चों का पेट भी भरा और मेरी अपनी, अंदर की कोई तड़पन भी मिटाई। बेवा के सरीर की तड़पन..... आप समझते हैं ना? इस मुई तड़पन की बातें मैं और जीनतबेन, केम्पवाले दिनों में खूब करते थे। इसी एहसास के चलते मुझे लगता है कि सिरफ़ खुशी या सिरफ़ गम जैसा कुछ नहीं होता है.... जैसे काला और सफ़ेद —दो ही रंग नहीं होते हैं इस दुनिया में.... है ना?! कुछ कुछ बीचवाला ज़रूर होता है.... जो थोड़ा थोड़ा बुरा भी है पर कुछ कुछ अच्छा भी लगता रहे बेवा के सरीर को.... है ना?!

(19)

बड़की—

(खुशी से उछल कर) मां.... मां.... आज तो बड़ा मजा आ गया। मैं जब भैंस की लोन का हफ़ता देने जीनत मौसी के ओफ़िस पहुँची, तो.... बा.... प रे! क्या भीड़ थी?... कैसा हंगामा था! और जीनत मौसी तो बिलकुल हिरोईन बनी हुई थी।

—————0000—————

अब जीनतवाले स्पॉट पर जीनत फोटोग्राफर, TV इन्टरव्यूअर, संस्थावालों के बीच में है। जीनत खुशीखुशी पोज़ दे रही है, उनको पूछे गये सवालों के जवाब दे रही है। खुश है पर संकोच(मूँझवण) भी साथ साथ में चेहरे पर दिखाई दे रही है।

(20)

कोरस:

1. जीनत अकरम शेख का बहुमान हो रहा है। उसके ग़म की कहानियां रची जा रही हैं। दुनियाभर की 1000 ग़मज़दा पर बहादुर महिलाओं में उसकी गिनती की गई है, जिन्हें शांति-पुरस्कार मिलेंगे।
2. कहीं हम, जो उनके साथ होने का दावा कर रहे हैं... अपने नाम –अकराम के लिये तो उसे उंचा नहीं उठा रहे हैं?!
3. जीनत खुश ही हो रही है, अलबत्ता! पर क्या उसके अंदर के घावों को छिपा ने के लिये कहीं यह मुस्कान उभारी नहीं जा रही है?!
4. हो सकता है, वह खुद भी बहुत ही हिंमतवाली हों फिर भी... उसकी निजी ट्रेजडी को हम कैसे नज़र अन्दाज़ कर सकते हैं?
5. हमारी ख़ोख़ली मानवीयता के चलते हम उसके ग़म का यह ग्लेमराईजेशन तो नहीं कर रहे हैं?!
1. सन दोहज़ार दो के हत्याकांड को झेलनेवाली इस अकेली औरत को सचमुच क्या चाहिये यह सोचे बिना... या फिर अपने तरीके से सोचकर हम उसकी जो हालत कर रहे हैं... उसका असर कैसा होगा?... ख़ैर... आगे आगे देखिये होता है क्या?!

—————0000—————

(उस और बड़की पर स्पॉट)

बड़की- माँ.... सच्ची.... जीनत मौसी हिरोईन बन गई!.... कम से कम मेरे लिये तो ज़रूर! मैंने तो ठान ली है कि जीनतमौसी की तरह सनस्था में जुड़ कर ग़रीब बहनों के लिये काम करूंगी और ख़ूब नाम कमाऊंगी। माँ.... सुन रही हो ना?

चांदनी- हाँ बेटा....

बड़की- मैंने ठीक सोचा है ना?

चांदनी- हाँ बेटा.... शायद!

(21)

जीनत कहीं बाहर जा रही हो उस हिसाब से बेग भर रही है। खुश है। गुनगुना रही है। इतने में उसके मोबाईल की घंटी बजती है।

जीनत- हलो! ओह.... तुम?! बस, तैयार ही हो रही हूँ। फ़ारुक, तुम मुझे लिवाने आ रहे हो ना? नहीं? क्यों? ठीक है। चलिये जानब, मैं ही तैयार हो के, निकलती हूँ और रोड़ पर खड़ी रहूंगी.... हाँ.... हाँ.... वहीं ढाबे के सामने। हाँ बाबा हाँ, टाईम से पहुँचूंगी। देर नहीं होगी रे.... नहीं होगी। ओ.के.?

(फोन रख कर, खुशी खुशी बेग भर निकल जाती है)

(22)

उसे निकलती देख कर पड़ौसियों की प्रतिक्रिया पर कोरस कहेगा:

कोरस:

1. राहत कोलोनीओं में, तालूका के पुलिस थाने या शहर के कोर्टों में ज़ीनत और फ़ारूक को अकसर साथ साथ जाना पड़ता था।
2. उन्हें साथ साथ जाते हुए देख कर लोग ताने कसते थे।
3. ज़ीनत को अकेली जाते हुए देख कर भी लोग बोलियां बोलते थे।
4. कोई कहता था कि अब तो बड़ौदा-अहमदाबाद क्या..... बंबई-दिल्ली के फ़ेरे भी खूब करती होगी!
5. और कोई कोई तो यहां तक भी कहता कि अब तो हवाई जहाज़ में बैठ कर लंडन-अमरिका भी जायेगी.... एवोर्ड जो मिल गया है!
1.आजकल की इन संस्थाओं के बारे में भी ये ही सुनने में आता था कि जब ज़र्रे को उठा कर आसमान में बिठाया जाता है तो ज़र्राँ हरेक की आँखों की किरकिरी ही बन जायेगा।
2. और हां.... यह बोलियां सिर्फ़ औरत के ही हिस्से में आती है -सिर्फ़ औरत की होती है बदनामी -मर्द की कभी नहीं।

(23)

ज़ीनत निढाल सी बैठी है। रोती नहीं है, आँखें पथरा गई है। मोबाईल लगाती है। कोई उठाता नहीं है। एक-दो बार और भी कोशीश करती है। फिर नाकाम होकर जड़वत् बनकर बैठी है। चांदनी के स्पॉट पर प्रकाश। चांदनी जैसे ज़ीनत की हालत देखती है और कहती है:

- चांदनी- अपने मन का बोझ हल्का कर लो, बेन! (ज़ीनत कुछ नहीं कहती फिर कुछ देर बाद)
- ज़ीनत- उसने मुझे ऐसा क्यों कहा? ऐसी बात क्यों की मेरे साथ?
- चांदनी- क्या कहा? कौन सी बात?

- जीनत— ... वह मुझसे जलता है, मुझे यह जो शोहरत मिल रही है उससे वह खुश नहीं है... जलता है।
- चांदनी— नहीं — नहीं, तेरी कुछ ग़लत फ़हमी होगी, बेन!
- जीनत— नहीं.... उसने मेरे मुँह पे कहा कि जीनतबी! तुम यह जो शानोशौक़त के सातवें आसमान पर उड़ रही हो.... तो यह मत भूलो कि यह सब करने—करवानेवाला मैं हूँ! मैंने ही उन हज़ार बहादूर महिलावाले एवोर्ड के लिये तुम्हारा नाम आगे किया था... वरना तुम क्या? तुम्हारी औकात क्या?
- चांदनी— अरे!!! पन वह तो तुझे कितना पसंद करता है!
- जीनत— नहीं! ऐसा कुछ नहीं है। उस दिन हम शहर से वापस लौट रहे थे तब उसने अपनी गाड़ी झाड़ियों में रोक दी। शाम का झुटपुट अंधेरा था। उसने.... उसने मुझ से कहा कि जिनत बीबी! यह शानोशौक़त बनाये रखना चाहती हो.... यह नौकरी टिकाए रखना चाहती हो तो मुझे खुश रखना पड़ेगा! तुम लाचार बेवा थी, मैंने तुम्हारी ज़रूरतें पूरी की.... अब तुम मेरी ज़रूरतों को समझो!
- चांदनी— अरे!!!... फिर?

जीनत अवाक् सी तकती रहती है

(24)

*कोरस:

1. फिर क्या? वही हुआ जो लाचार औरतों पर होता आया है।
2. पितृसत्ता सिर्फ़ मार—पीठ और अत्याचार से ही नहीं प्रगट होती है.... उपर उपर से दिखनेवाले मुलायाम रिश्ते अंदर से कहीं बहुत ही कठोर—बहुत ही क्रूर होते हैं।
3. रिश्तों के नाम पर ऐसे ही दमन होता रहता है। औरतों पर।
4. औरत का शरीर भी लेन—देन का माल है। ज़रूरत पड़ने पर भुनाने का सिक्का है।
5. ऐसा ही होता आया है, मर्दों के हाथों चलनेवाली सत्ता में, समाज में।

(25)

- चांदनी— बेन, थोड़े दिनों में सबकुछ ठीक हो जायेगा। शरीर को शरीर की आदत भी हो जाती है। वैसे तो तुम दोनों एक दूसरे को चाहते भी हो; ना? और इससे पहले भी तुम लोग.... मानें
- जीनत— पता नहीं.... अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता..... और तुम ये सरीर की बात कर रही हो.... मैं कुछ भी.... माने..... ऐसा लगता है कि मेरे बदन पर सौ सौ सांप लौट रहे हो.... नहीं ... वह मतलबी रिश्ता था..... सिर्फ मर्दोवाला! मैं उस को छोड़ूंगी नहीं; बदला लेकर रहूंगी।
- चांदनी— तुम शायद अपने आप को ठीक से नहीं जानती हो। अपने औरत के अरमान कैसे होते हैं....! अं... समझ लो, इस बखत मैं चांदनी नहीं, चंपा बनकर तुम से बतिया रही हूँ! हमारे लोग मानें हम.... आदिवासी इस मामले में शायद ज्यादा समझदार है। हम गोठिया—गोठण बनके अपने सरीर को 12—14 की उम्र से ही पहचानने लगते हैं। अरमानों को टटोलने लगते हैं। लड़का लड़की के लिये.... यह सब बिलकुल कुदरती होता है।
- जीनत— होता होगा! पर मैं चंपा नहीं, जीनत हूँ।
- चांदनी— चंपा बनने की ज़रूरत ही नहीं! अपने अंदर झांको, सारे पर्दे लबादे हटा कर झांको... ठेठ अंदर तुम्हें औरत मिलेगी, सिर्फ औरत!
- जीनत— झूठ! कोई औरत सिर्फ औरत नहीं होती है!

(26)

कोरस

1. ठीक कहा जीनत ने! स्न दोहजार दो की फरवरी के बाद गुजरात में, औरतें मुसलमान हैं, औरते हिन्दू हैं, औरतें आदिवासी हैं, औरते दलित हैं.....
2. पर यह सिर्फ दोहजार दो के गुजरात का ही किस्सा नहीं है.... बंटवारा हुआ था तब औरतें हिन्दूस्तानी थीं, औरतें पाकिस्तानी थी

3. हर बार.... दंगों-जंगों में औरतें कटती भी रहती हैं, बँटती भी रहती है.....
4. वह इसाई होती है, यहूदी होती है, तुर्कन या हब्शी होती है.....
5. जब जीतनेवाले मर्द उसे हारनेवाले मरदों की इज्जत समझते हैं, देशभूमि समझते हैं, धरती समझते हैं.....। तब ऐसा ही होता है।

चांदनी- हाय रि औरत का मन! जो पल कभी सुख ही सुख देते हैं.... वो ही अचानक बलात्कार की पीड़ा बन जाते हैं।

(27)

ज़ीनत मंच पर सिर झुकाये खड़ी है। कानों पर हाथ दबा कर कुछ नहीं सुनने की कोशीश कर रही है। चेहरा त्रस्त है।

कोरस

1. पर हारे हुए फ़ारुक ने ज़ीनत को बदनाम करने में कोई क़सर नहीं छोड़ी।
2. जिस मोहल्ले के लोग ज़ीनत की मदद से दो वक़्त की रोटी पाते थे उनके कान भर कर उन्हें ज़ीनत के विरुद्ध उकसाया।
3. जो लोग ज़ीनत को इज्जत देते थे, चाहते थे वे ही पुकारने लगे हैं: ज़ीनत शेख़ रांड छिनाल! ज़ीनत शेख़ हाय हाया! ज़ीनत शेख़ मोहल्ला छोड़ो! ज़ीनत शेख़ गाँव छोड़ो!

यह सब सुनकर ज़ीनत त्रस्त होती है, फिर बिफ़र कर:

ज़ीनत- सुना आपने ? यह उसीने करवाया जिसने मुझे इन लोगों के दुःख दूर करने की राह दिखाई! और ये.... ये लोग?... जिन्हें मैंने अपना समझा वे ही आज मुझे दुत्कार रहे हैं! वह आदमी मेरे तीन साल के काम पर पानी फेर रहा है। पर मैं सनस्था में पहुँचाउंगी मेरी फ़रीयाद। मेरी बेईज्जती संस्था की भी

बेइज्जती है ना? (फ़ोन लगाती है) हलो, सर जी! कहां पर है आप? आप से बात करनी है। अरे मैं... जीनत शेख— आदिलाबाद से!... सुनिये सर जी! यहां कोलोनी में मेरे सामने.... हां... हां मुझे पक्का पता है यह सब वोही शख्स करवा रहा है। क्यों? ये पर्सनल थोड़ी ना है? संस्था की भी जवाबदारी बनती है ? आखिर मैं आप लोगों के लिये काम.... हैं.... काट दिया! अजीब लोग है! यहां पर मेरे उपर इतना सब हो रहा है और ये संस्थावाले मान नहीं रहे हैं?! (फ़िर से फ़ोन लगायेगी) हलो, सर जी! काट क्यों दिया? सुनिये, एक बार आज अपनी आँखों से देखिये —कानों से लो फ़िर से काट दिया! ये मरदजात! शायद मैडम मुझे (फ़ोन लगा कर) हैलो... हैलो मैडम! सुनाई देता है? हां... जी... मैं जीनत शेख.... थोड़ा वक्त है आप के पास? अस्सलामो आले कुम सुनिये, यहाँ बहुत बबाल चल.... अरे, काट दिया?! (फ़िर से लगाती है) मैडम.... आप कहें तो खुद आके आपको ओफ़िस में मिलूं... पर ये लोग मुझे घर से बाहर.... हलो! हलो!

नाकाम कोशिश से जीनत के चेहरे पर गुस्सा भी है, खुन्नस भी।

जीनत—

कोई बात नहीं आप भले ही न सुनो मुझे.... मैं सब को ऐसे दिन दिखाऊंगी जब मेरी सुनने को आप सब को मजबूर किया जायेगा।

कठोर और खुन्नस भरा चेहरा करके खड़ी रह जाती है।

(28)

*कोरस:

1. बाहर के समाज की बेरुखी और अपने भीतर की छटपटाहट को सह पाने की एक सीमा आ गई....
2. और ज़ीनत ने आखिर अपने पहचानवालों के साथ, शहर जाकर फ़ारुक के सामने केस दायर किया.... बलात्कार का।
3. बदले में फ़ारुक ने ज़ीनत के नाम आनेवाले, बेवा को मिलनेवाले पैसे रुकवा दिये, खुद उसकी विधवा-पेंशन रोक दी और दोनों और दोनों का पक्ष लेनेवालों के अलग अलग खेमें बन गये। जिसमें संस्थाएं भी और कर्मशील भी घसीटते गये।
4. एक मिनीट! यहां अमन और इन्साफ़ के लिये काम करनेवालों की बात हो रही है या मर्द और औरत के रिश्ते के दाँव-पेच की?
5. ठीक पूछा- हां, यहां अमन और इन्साफ़ के लिये काम करनेवाले खुद मज़लूम खुद अन्याय का शिकार होनेवाले मर्द और औरत के रिश्ते के असर की बात हो रही है। अपने ही लोगों के हालात पर पड़नेवाला असर!

(29)

चांदनी और बड़की के बीच बात हो रही है –अपने अपने स्पॉट पर

- बड़की- मां, ज़ीनत मौसी के साथ ये सरासर अन्याय हो रहा है।
चांदनी- ये सारा मरदोंवाली सत्ता का चक्कर है। ज़ीनत को भी उसी चक्कर का एक आरा बनाया गया.... पर वह भली मानुस उसमें फंसती ही गई। पिसती ही गई। औरत के अरमानों को कौन समझेगा?

- बड़की— पर मां, उनकी संस्था में तो कैसी समझदार मैडम भी है! ख़ाली मर्द सर ही नहीं है।
- चांदनी— सवाल सर या मैडम का नहीं है —मरदोंवाली सोच मानें मतलबी सवारथ की सोच! जीनत का फ़ायदा किसने नहीं उठाया?... फ़ारुक से ले कर बंबई दिल्ली वालों तक... और संस्थाओं से लेकर हमारे जैसे मज़लूमों तक... किसी ने क़सर नहीं छोड़ी है।
- बड़की— नहीं मां! ये बात गलत! मौसी तो कितनी हुशियार है! कितनी तो दुनिया देखी है उसने! और जो भी काम करती है... दिल से करती है।
- चांदनी— घायल दिल से। तार तार हुए दिल से। तेईसे लोग गंवाये हैं उसने —गांव—घर—कारोबार.... कुछ भी नहीं रहा उसके पास! तिस पर ये फ़ारुकवाला मामला... पहले उस मासूम का इलाज तो किसीने नहीं किया... उपर से औरों के आँसू पौछने का काम सौंप दिया। अकेली जान.... कितना बोज़ सह पाती?
- बड़की— मां.... मैं एक बात कहूँ ?! अगर कोई हम छै: भाईबहनों की जवाबदारी लेनेवाला तुझे मिल जाये, तो तू भी सादी कर ले।
- चांदनी— अरे वाह! मेरी बड़की तो बड़ी सयानी हो चली देखूं! ख़ैर, मेरी बात छोड़.... मैं तो बूढ़ी हो चली।
- बड़की— इसी लिये तो कहती हूँ। मालूम?... गांववाले..... अं.... कैसी कैसी बातें करते हैं तेरे बारे में....
- चांदनी— फूट.... गांववालों से जाके पूछ— मेरा और मेरे बच्चों का पेट पालने को तैयार है? मैं परवा नहीं करनेवाली! तू और बड़ी होयेगी तब समझेगी के पेट की भूख के सिवा एक और भी भूख होती है हर इन्सान को— चाहे मरद हों या औरत।
- बड़की— मैं बड़ी हो चुकी हूँ, माँ!

जीनत अंध—दिशाहीन की तरह उंधमुंध बैठी है।
अनदेखी दीवारों को, अंतहीन दिशाओं को जैसे टटोल रही है बुदबुदा रही है

- जीनत— यह.... कहां.... हूँ मैं? ओफिस में? किसीके घर में? दिल्ली में? या बड़ौदा? ... कोरट में? ये... ये... पुलिस थाना है क्या? ये.... कागज़ कैसा? क्या लिखना है? कहां दस्तख़त करूं.... कौन हो तुम? और ये.... जीप.... हमें कहां ले जा रही है मैडम? मुझे मेरे बेटे से मिलना है....मुझे मेरे बेटे के पास ले जाओ.... ये कहां.... कौन हो आप?..... यह हम कहां आ गये?... (निढाल सी गिर जाती है)

(31)

*कोरस:

1. देखी इसकी हालत? जीनत ने तैश में आकर फ़ारुक पर केस करना चाहा तो कई लोगों ने उसे बढ़ावा दिया –जैसे स्थानिक पुलिस और प्रशासन! जो चाहते थे कि फ़ारुक जैसे सक्रिय कार्यकर को निष्क्रिय करने का एक ही रास्ता है कि उसे किसी न किसी बहाने 'अंदर' कर दिया जयें। बलात्कार एक बहुत बड़ा जुर्म है जो फ़ारुक को लंबे अर्से तक बदनामी के अंधेरे में ढकेल सकता था।
2. ऐसे मौका परस्तों ने जीनत को पटाया–दबाया–धमकियां दी और केस करने को अगुवा तक करवाया।
3. तो दूसरी ओर जो अमन और इन्साफ के कामों में कामयाब होना चाहते थे और नाम बनाना चाहते थे उन के लिये फ़ारुक के कामों की बहुत ही अहमियत थी.... वे चाहते थे कि जीनत केस वापस कर लें।
4. उन्होंने भी जीनत को समझाया–दबाया और जीनत को गाँव–गाँव, शहर दर शहर घुमाया गया। छिपाया गया; कभी उसकी सलामती का वास्ता देकर और कभी पूरे सीन से उसे दूर रखने के लिये।
5. ऐसे लोगों में कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने जीनत को कामचोर कहा, झूठी हमदर्दी बटोरनेवाली कहा, मूर्ख कहा.... बचकाना कहा और कुछ नारीवादी खयालात की रखवाली करनेवाली महिला कर्मशीलों ने उसे दलाल तक कहा।
1. –अरे, किसीने तो उसे फुसलाया–पटाया कि जीनत! तुम केस वापस ले लो! हमने फ़ारुक को समझाया है वह तुमसे शादी करेगा!

(32)

जीनत उसी अवस्था में बुदबुदा रही है:

जीनत– मेरी बेनों.... मुझपे भरोसा रखो..... क्या करुं? कब करुं तुम्हारी फ़िकर?.... मैं खुद...मेरा अपना ही ठिकाना कहां है? आज यहां.... कल वहां..... नहीं नहीं.....

मैं सरकारी योजनाएं लाउंगी.... क्यों? मुझे पुलिस की चमची क्यों कहते हो? मेरी बेनों के लिये... ना.... ना.... मैं वकील की चमची भी नहीं हूँ! कौन कहता है?... मैं.... क्या करूँ?... बेनां भूखों मरती है मेरी.... बेनों.... मैं उतनी बेईमान नहीं हूँ.... ये लोग मुझे समझते क्या है?

उतने में फ़ोन की रिंग बजती है। टटोल कर, बहुत देर के बाद उठाती है वह फ़ोन।

ज़ीनत— ऐं? आहाहा.... सर जी! जी.... क्या? ऐं? राजीनामा भेज दूँ ?... पर... मैं... सर जी! आप लोग.... आप लोगों ने ही तो मुझे इनाम अकराम..... सम्मान दिलवाये.... अब..... राजीनामा?! ज़ीनत अकरम शेख़ का राजीनामा?(फ़ोन सरक जाता है।)

(33)

कोरस:

1. और ज़ीनत अकरम शेख को आज फिर से एक गँवार, अधपढ़ी, लाचार बेवा बना दिया गया है।
2. ऐसा ही होता है.... जब इन्सान को शतरंज की बाज़ी का मोहरा बनाया जाता है।
3. ऐसा ही होता है.... जब उस के घाव मिटाये नहीं जाते हैं तो नासूर बन जाते हैं। बदबूदार नासूर.....
4. फिर उस में से टपकता है आंसू.... या लहू.... या झहर।
5. और कभी कभी कुछ लोग निकल पड़ते हैं उन आंसूओं की लहू की और झहर की झाँकी करने..... ज़माने के आगे ऐसी ज़िन्दगानीयों को उजागर करने के लिये।

जीनत बैठी है। हाथ में मोबाईल। कमज़ोर –फिकी लगती है।
दोनों कलाईयों में पट्टी बंधी है। फ़ोन लगाती है:

जीनत— दीदी! आप कहां हो? मिलना है आप से। बहुत कुछ हो चुका है –आप से पिछले साल मुलाकात हुई उस के बाद.... नदियां में पानी, आँखों में आंसू और रगों में खून.... बहुत कुछ बह गया है। हां, कुछ ऐसा ही समझो.... आप से बहुत सारी बातें करनी हैं..... पानी सरसे उपर आ गया तो मैं बौखला गई.... मैंने अपने हाथ की रंगों को काट लिया..... तीन दिन हो गये..... पड़ौसियों ने हस्पताल में दाख़ल कर दिया..... मैं करमजली बच गई.... दो दिन के बाद होश आया तो सब से पहले आप ही से बात करने की ललक उठी। दीदी.... आप हमारे जैसों के बीच उम्मीद ढूँढ रही हैं ना..... तो लो! अब मेरी कहानी में कुछ नया जोड़ लो!..... हस्पताल के बिस्तर पर पड़े पड़े बहुत कुछ सोच लिया..... अब जब नयी ज़िन्दगी मिल ही गई है तो नये सिर से जिउंगी.... ना! उस इन्सान से अब शादी कैसी? मैं तो अपने पैरों पे खड़ी रहना चाहती हूँ और बहनों का काम नये तरीके से करना चाहती हूँ.... अरे, कुछ भी करूंगी.... मेरी बेनां को भूखा कैसे मारूंगी? बेसहारा कैसे छोड़ूंगी? उनका भरोसा कैसे तोड़ूंगी?.... मैंने पिछली बार आप से कहा था ना.... कि बेनां काम करने के वास्ते मैं तो सात समंदर भी पार कर सकती हूँ.... और बेनां के इन्साफ़ के वास्ते अगर मैं मर भी गई तो.... मेरी तो क़ब्र से भी आवाज़ आयेगी! तो लो, मैं तो मूर्ई, क़ब्र से भी लौट आई! अब तो और भी डट कर काम करूंगी.... दीदी! ज़रूर मिलना है.... कहिये तो मैं अमदाबाद आ जाऊँ? आप मेरी कहानी नये सिर से लिखना..... जमाने से कहना..... हां! मैं जिन्दा हूँ! (फ़ोन रख देती है)

तुरंत ही दूसरी रिंग बजती है। उठती है –नाम पढ़कर, आवाज़ सुन कर, पहचान कर.....

ज़ीनत— हलो..... बड़की! अरे बेटा, मैं तुझे ही याद कर रही थी। सुनो बच्चा, कलपरसों में मुझे मिलने आ जाओ ना! बेनो का नया काम सोच रही हूँ..... तेरी मदद तो चाहिये ही चाहिये।

बड़की अपनी स्पॉट पर दिखती है

बड़की— ज़ीनत मौसी, मां नहीं रही।

ज़ीनत— ऐं? क्या कहा?

बड़की— मां चल बसी। तीन दिन हो गये। आप को कितने फोन किये, पर....

ज़ीनत— अरे, मैं तो हस्पताल..... छोड़ मेरी बात..... बता, उसे हो क्या गया अचानक? बिमार हो गई थी?

बड़की— नहीं! पेट से हो गई थी। तीन-चार महिने चढ़ गये थे। बच्चा गिराने के लिये कुछ खा लिया। बच्चा भी नहीं रहा और खुद भी! पूरे शरीर में झहर फैल गया था। मरते मरते मेरा हाथ थाम कर कहा— बेटा, मैं तो मेरी जवाबदारी निभाने चली थी; पर सब कुछ उल्टा हो गया..... अब सारी जवाबदारी तुझे सौंप रही हूँ।मौसी! मौसी! सुन रही हो ना?

ज़ीनत— हां बच्चा..... तुम..... अब तुम क्या.....

बड़की— अब तो लगता है, मुझे भी मां का धंधा संभालना पड़ेगा।

ज़ीनत चुप! फोन सरक जाता है।

बड़की भी फोन बंद कर के तनकर खड़ी हो जाती है।

(36)

*कोरस अनुरूप हमींग करता हुआ दोनों के आगे खड़ा होता है।

*जीनत अपने पटीबँधे हाथ हवा में लहरायेगी, सामने आयेगी

*बड़की भी ऐसे ही सामने आयेगी।

दोनों— मर कर तो छूटकारा मिल सकता है
पर हम तो जिन्दा है
हमारी मुक्ति कब होगी? कैसे होगी?

हमींग

(37)

हमींग रोककर कोरस एक एक कर के कहेगा:

1. यह किसी एक जीनत, एक बड़की या एक चांदनी की कहानी नहीं है। यह किसी ज़ाहिरा, बिल्कीस, मदीना या नूरजहां की भी हो सकती है।
2. या तो किसी भी यहूदी, कश्मीरी, मणीपुरी, असमिया या फिर अफ़ग़ानी औरत की कहानी भी इससे मिलती जुलती हो सकती है।
3. हर जंगों-दंगों के बाद —खास करके एक ही समुदाय के हत्याकांड के बाद नफ़रतभरी हवाओं में साँस लेता रहता है सारा समाज।
4. अलबत्ता, कोशिशें होती ही रहतीं हैं इन की जिन्दगियों के टुकड़ों को जोड़ने की।
5. पर ग़लतियां भी होती रहती हैं उस राह में। ग़लतियां; जो समाज को नये सबक भी सिखातीं हैं।

1. यूं तो ऐसे हर बिखरे समाज के सामने, कई सवाल खड़े होते हैं ऐसी कोशिशों के दरमियान.....
2. यूं ही, कई सारे पेचीदा सवाल अंधेरा ओढ़कर खड़े हैं, इस इक्कसवीं सदी के जगमगाते गलियारों में.....

—0000—

तभी दर्शकों में से एक युवती खड़ी होकर कहेंगी—

युवति— हम ऐसे सवालों के बारे में भी नाटक बनायेंगे। और उस कोशिश में मैं जरूर हिस्सा लूंगी।

—0000—